International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 05, No. 01(I), January - March, 2023, pp. 92-96

मनु के राज्य का सप्तांग सिद्धान्त की अवधारणा

डॉ विक्रम सिंह*

प्रस्तावना

मनु के जीवन काल के विषय में निश्चित मत का निर्धारण करना कठिन है। भारतीय साहित्य में मनु को मानव सभ्यता के प्रवर्तक के रूप में माना जाता है। शतपथ ब्राह्मण में जल प्लावन की एक घटना के उल्लेख के माध्यम से बताया गया है कि जल प्लवन के पश्चात् मनुष्यों मे केवल मनु शेष बचे।

इस प्रकार वे भावी सभ्यता के सूत्रधार बने। एक मान्यता यह है कि यह मनु ही मनुस्मृति के रचनाकार थे। ऋषि दयानन्द के अनुसार मनुस्मृति (वैदिक मनुस्मृति) के रचयिता महर्षि रवाय गुव मनु है, जो सृष्टि के प्रथम पुरूष भी है। यह उल्लेखनीय है कि स्वयं इस ग्रन्थ में तीन स्थानों पर मनु के वंश का उल्लेख किया गया है, जिससे ज्ञात होता है कि मनु ब्रह्मा के पुत्र अथवा शिष्य है।[1] किन्तु अनेक विद्वानों का मत है कि मनुस्मृति के रचयिता स्वयांभूव मनु नहीं, अपितु वैवस्वत मनु है। उनका तर्क है कि मनु स्मृति में स्वायंभुव मनु अर्थात प्रथम मनु के वंश का उल्लेख करते हुए वैवस्वत मनु को सातवाँ मनु[2] बताया गया है; क्योंकि प्रथम मनु के काल में सातवें मनु का उल्लेख सम्भव नहीं है, अतः इस ग्रन्थ को सातवें मनु अर्थात वैवस्वत मनु की रचना ही माना जाना चाहिए। किन्तु इस मत से असहमत विद्वानों का तर्क है कि मनु की वंशवली से संबंधित यह अंश मूल ग्रन्थ का भाग नहीं है, अपितु प्रक्षिप्त अंश है, अतः अस्वीकारणीय है। संक्षेप में उपरोक्त मतों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यदि मनु स्मृति स्वांयभुव मनु की रचना है तो यह सृष्टि के प्रथम पुरूष, अर्थात सृष्टि के एकदम प्रारम्भिक काल की रचना है और यदि यह वैवस्वत मनु की रचना है तो भी यह वैदिक काल की ही रचना है।

राज्य की प्रकृति

यद्यपि मनुस्मृति में राज्य को अपनी उत्पति से दैवी संस्था माना है, किन्तु इसके साथ यह भी कहा है कि प्रभु ने राज्य (राजा) के निर्माण से पहले ही दण्ड विधान का निर्माण कर दिया था;[3] यह दण्ड ही वास्तव मे राज्य (राजा) होता है।[4] इस विवरण से यह स्पष्ट है कि मनु ने राज्य को एक दैवी संस्था तो माना है, किन्तु इसे अपना प्रकृति से स्वयं में सर्वोच्च एवं साध्य नहीं माना है। वस्तुतः राज्य दैवी दण्ड अर्थात विधान[5] के अधीन है और वह इस दैवी दण्ड को लागू करने का साधन है।

जब राज्य दण्ड को लागू करता है तो मनु के अनुसार इस दण्ड के भय से ही सब लोग मर्यादा युक्त भोगों (अधिकारों) को भोगने में समर्थ होते है[6], किन्तु इस दण्ड के अभाव में सर्वत्र हिंसक अव्यवस्था फैल जाती है।[7]

* सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, परिष्कार कॉलेज ऑफ ग्लोबल एक्सीलेंस, मानसरोवर, जयपुर, राजस्थान।

उपरोक्त विवरण से राज्य की प्रकृति के बारे में तीन तथ्य स्पष्ट होते है – (i) राज्य अपनी प्रकृति से दैवी विधान (दण्ड) के आधीन दैवी संस्था, तथा (ii) राज्य अपनी प्रकृति से ऐसी संस्था है जो विधान को लागू करके सार्वजनिक हित की वृद्धि मे सहायक होती है, किन्तु जब यह संस्था विधान की उपेक्षा करती है, तो अव्यवस्था को जन्म देती है (iii) राज्य स्वयं में साध्य नहीं है, अपितु दैवी विधान को लागू करने का साधन है।

मनु स्मृति में वर्णित राज्य की प्रकृति के सिद्धान्त के बारे में यह उल्लेखनीय है कि यद्यपि मनु ने राज्य की प्रकृति का सिद्धान्त नहीं है, अपितु राज्य के निर्माण का सिद्धान्त है।

राज्य का सप्तांग सिद्धान्त

मनु स्मृति में राज्य के सावयव स्वरूप का वर्णन किया है। मनु ने राज्य के घटकों के लिए प्रकृति शब्द का प्रयोग किया है, एवं राज्य की सात प्रकृतियां स्वीकार की है – (1) स्वामी (राजा), (2) मन्त्री (3) पुर किला परकोटा खाई आदि से सुरक्षित राजधानी (4) राज्य, (5) कोष (6) दण्ड (राज्य की चतुरंगिणी सैना अर्थात् हथदल, गजदल, रथदल एवं पदाति सेना) एवं (7) मित्र।[8]

- स्वामी – मनु ने राज्य को स्वामी की संज्ञा दी है, तथा नैतिक गुणों, प्रशासनिक क्षमता तथा दायित्वों के प्रतिनिष्ठा से युक्त राजा को राज्य के लिए आवश्यक माना है।
- मन्त्री – मनु का मत है कि राज्य का कार्य कुशल मन्त्रियों के बिना नहीं चलाया जा सकता है। मन्त्री को राज्य की प्रकृतियों में स्थान देकर मनु ने स्पष्ट कर दिया है कि शासन की शक्ति राजा की निजी शक्ति हैं, अपितु ऐसी संस्थागत शक्ति है, जिसका प्रयोग राजा सुयोग्य मंत्रियों के माध्यम से ही कर सकता है। मनु ने मन्त्रियों के आवश्यक गुणों और योग्यताओं का भी विस्तार से वर्णन किया है।
- पुर – पुर का अर्थ राज्य की ऐसी राजधानी से है, जो भली–भांति सुरक्षित हो। मनु ने पुर में सुरक्षित दुर्ग की आवश्यकता व्यक्त की है। मनु ने दुर्ग की कई श्रेणियों – यथा धन्नवन दुर्ग, महिदुर्ग, जलदुर्ग, वृक्षदुर्ग, मनुष्य दुर्ग, एवं गिरि दुर्ग का उल्लेख किया है।
- राज्य – राज्य के अंगों में एक अंग के रूप मे मनु द्वारा 'राज्य' का उल्लेख कुछ भ्रम उत्पन्न करता है। वास्तव में मनु ने राज्य शब्द का प्रयोग जनपद के अर्थ में किया है। इस प्रकार मनु ने 'राज्य' में राज्य की सीमाओं के अधीन आने वाली भूमि और उसमें निवास करने वाली जनता को सम्मिलित किया है। कौटिल्य ने भी जनपद को राज्य का एक अंग बताते हुए जनपद में राज्य की भूमि और उसमें निवास करने वाली जनता दोनों को सम्मिलित किया है।
- कोष – राज्य में शासन के पास एकत्रित धन को मनु ने कोष का नाम दिया है। मनु की मान्यता है कि राजा के पास समुचित मात्रा में कोष होने पर ही वह प्रजा की सुरक्षा और उसके कल्याण के लिए विभिन्न प्रकार के कार्य करने की दायित्वों की पूर्ति कर सकता है।
- दण्ड – 'दण्ड' का अर्थ सेना है, जिसे कहीं–कहीं मनु ने 'बल' भी कहा है। मनु ने सेना के अग्रलिखित प्रकार बताये है – हस्ति सेना, रथ सेना, अश्व सेना, पैदल सेना (पदाति) तथा जल सेना (नाविक)। डॉ. श्यामलाल पाण्डेय के अनुसार मनु ने सेना के प्रकारों में भारवाहक' की गिनती भी की है, अर्थात् मनु ने सेना के कुल छह प्रकार बताये है।[9]
- मित्र – मनु ने मित्र को राज्य के आवश्यक अंग के रूप में स्वीकार करके दो तथ्यों को ओर संकेत किया है। प्रथम तो यह कि कोई भी राज्य शून्य में नहीं रहता और उसे दूसरे राज्यों से संबंध अनिवार्य रूप से बनाने होते है। द्वितीय यह कि राज्य को अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए यह प्रयत्न करना चाहिए कि उसके अन्य राज्यों से संबंध मैत्रीपूर्ण रहें। इस प्रकार मनु ने मित्र को राज्य की सप्तांग प्रकृतियों से स्थान देकर राज्य द्वारा शान्ति की नीति अपनाये जाने की आवश्यकता स्पष्ट की है।

राज्य की प्रकृतियों की उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि सप्तांग सिद्धान्त वास्तव में राज्य की प्रकृति को समझने के लिए पूर्ण आधार नही माना जा सकता। वास्तव में मनु ने तो राज्य की संरचना और गतिविधियों के संचालन के लिए आवश्यक साधनों को ही राज्य के अंगों या प्रकृति का नाम दिया है। मनु द्वार ाप्रतिपादित राज्य की प्रकृति के विश्लेषण के लिए राज्य के उद्देश्यों उसके कार्य–क्षेत्र व सम्प्रभुता आदि तत्वों पर विचार किया जाना आवश्यक है।

राज्य के इन सभी अंगों के तुलनात्मक महत्व के संबंध में मनु का दृष्टिकोण स्पष्ट है। उनका मत है कि प्रत्येक प्रकृति को उसके पश्चात दी गई प्रकृति की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया जाना चाहिए।[10] अर्थात राज्य का शीर्षस्थ स्वामी अथवा राजा को स्वीकार किया जाना चाहिए, राजा द्वारा राज्य कार्य हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग के रूप में मंत्री को स्थान दिया जाना चाहिए, इन दोनों के द्वारा राज्य की प्रशासन व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने के लिए अन्य प्रवृतियों का समुचित उपयोग किया जाना चाहिए।

राज्य की प्रकृतियों की तुलनात्मक वरीयता का निर्धारण करते हुए भी मनु ने इन सभी प्रकृतियों की पारस्परिकता को व्यक्त करते हुए कहा है कि त्रि–दण्ड (टिकटी– तिपाई) के समान परस्पर संबंध होने के कारण समस्त प्रकृतियां एक–दूसरे पर निर्भर है, तथा इनमें से प्रत्येक राज्य के लिए आवश्यक है।[11]

मनु ने कहा है कि जिस कार्य विशेष की सिद्धि किसी भी प्रकृति विशेष से होना सम्भव होता हो, उस प्रकृति को विशिष्ट कार्य के सन्दर्भ में श्रेष्ठतम माना जाना चाहिए।[12]

वस्तुतः सप्तांग राज्य की कल्पना राज्य संबंधी आधुनिक संकल्पना निकटतः तुलनीय है। इन सात अंगों मे ंराज्य की परिभाषा में गैटेल आदि विद्वानों द्वारा निर्दिष्ट चारों तत्व – भूमि, जनसंख्या, सरकार, सार्वभौमिकता, समाविष्ट है। स्वामी, आमात्य, प्रशासन व्यवस्था की मुख्य धुरी है जिसमें राज्य की प्रभुता निवास करती है। राष्ट्र व दुर्ग भूमि व जनसंख्या के द्योतक है। सेना व कोष राज्य की सुव्यवस्था के माध्यम है व मित्र के आधार पर ही राज्य की बाह्य सुरक्षा निर्भर करती है। सप्तांग राज्य का सिद्धान्त आधुनिक अवधारणा से कुछ भिन्न भी है। आधुनिक अवधारणा का निरूपण पाश्चात्य जनतंत्रों में पाये गये राज्य के स्वरूप के आधार पर की गई है। जो सूक्ष्मता व गूढ़ता आधुनिक परिभाषा में विद्यमान है उसका प्राचीन परिकल्पना में अभाव है।[13]

राज्य का आंगिक स्वरूप

मनु व कौटिल्य ने राज्य को एक सजीव एकात्मक शासन संस्था माना है।[14] मनु के अनुसार सात प्रवृतियां राज्य रूपी शरीर के अंग है, जो इस प्रकार हैं – स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र। कौटिल्य ने मनु प्रोक्त सप्तांग नामों को ज्यों का त्यों स्वीकार किया है, केवल पुर के स्थान पर दुर्ग एवं राष्ट्र के स्थान पर जनपद शब्द रखा है।[15]

महाभारत में सप्तांग राज्य की कल्पना उसी रूप में की गई है जैसा कि मानव धर्म शास्त्र में वर्णित है। महाभारत के अनुसार ये सात अंग आत्मा (राजा), अमात्य, कोष, दण्ड, मित्र, जनपद, और पुर है।[16] महाभारत कार जनपद और पुर को अंत में रखते है। मनु विभिन्न अंशों के घनिष्ठ पारस्परिक संबंध को स्पष्ट शब्दों में व्यक करते है। उनके अनुसार ये सातों अंग, परस्पर एक–दूसरे के सहारे राज्य के अस्तित्व को उसी प्रकार स्थिर रखते है कि जिस प्रकार तीन दण्ड एक दूसरे के सहारे खडे होकर त्रिदण्ड रूप आकृति के अस्तित्व को पृथ्वी पर स्थिर रखने में समर्थ होते है।[17] मनु सभी अंगों में एकता देखते है। उनके अनुसार सभी अंग महत्वपूर्ण है। कोई दूसरे से हीन नहीं है, हरेक की महत्ता अपनी जगह पर है दूसरे से बढ़कर नहीं है।[18]

कौटिल्य ने स्वामी को सर्वाधिक महत्व देते हुए पहली प्रकृति को हर बाद की प्रकृति की अपेक्षा अधिक महत्व माना है।[19] कौटिल्य ने प्रकृतियों के गुणों के साथ–साथ उनके व्यसनों का भी उल्लेख किया है। मनु का सप्तांग विवरण भी कौटिल्य के साम्य रखता है।[20] राज्य के सावयव स्वरूप का सिद्धान्त भारतीय मनीषियों की उर्वरता का परिचायक है।[21] राज्य के आधुनिक शरीर सिद्धान्त से इसके साम्य का कारण शायद यह है कि सभी युगों में शासक वर्ग का हित रक्षा के लिए राज्य के एकत्व पर जोर डालने के लिए प्रयास किये गये है।[22] राज्य की अवधारणा उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीयों की राज्य की अवधारणा मात्र आदर्शवादी

प्रस्थापनाओं पर आधारित नहीं थी वरन् इसका व्यवहारिक आधार भी था। राज्य के सावयव स्वरूप प्राचीन राजशास्त्रों की व्यवहारिकता का प्रतीक है। राज्य का संचालन सुचारू रूप से तभी चल सकता है जब उसके सभी अंग पारस्परिक सहयोग व सद्भाव से रहते हों।

मूल्यांकन

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन को मनु के योगदान का महत्व इस तथ्य से स्वतः स्पष्ट है कि मनु ने युनान मे ंराजनीतिक विचारकों द्वारा राजनीतिक दर्शन के सूत्रपात मे भी शताब्दियों पूर्व राज्य की प्रकृति, सम्प्रभुता, शासन के स्वरूप, राज्य–सत्ता पर नियन्त्रण की आवश्यकता और उसकी विधियों न्याय व दण्ड व्यवस्था पर राष्ट्र संबंधों के सैद्धान्तिक व व्यावहारिक पक्षों, कर प्रणाली तथा राज्य, समाज व व्यक्ति के संबंधों जैसे विषयों का व्यवस्थित विवेचन किया।

प्राचीन भारतीय ग्रन्थों यथा अर्थ शास्त्र, महाभारत व शुक्रनीतिसार आदि मे ंराज्य के सैद्धान्तिक आधार के रूप में दण्डनीति का विस्तृत विवेचन किया गया है तथा उसे ज्ञान की एक स्वतंत्र और स्वायत्त शाखा क रूप मे ंचित्रित किया गया है। कौटिल्य ने ज्ञान की चार शाखाओं त्रयी वर्ता, आन्वीक्षिकी व दण्ड नीति का विस्तृत विववेचन कर, राज्य के अस्तित्व के सैद्धान्तिक आधारों को भली–भांति स्पष्ट किया है। किन्तु मनु ने ज्ञान की शाखाओं का विवेचन नहीं, उल्लेख मात्र किया है। मनु ने दण्डनीति अथवा उसके महत्व का भी विवेचन नहीं किया। मनु ने शासन से केवल यह अपेक्षा ही है कि वह पारंगत विद्वानों से दण्ड नीति का ज्ञान की अन्य शाखाओं के साथ ही अध्ययन व अनुशीलन करे।[23]

मनु ने राज्य की उत्पति के प्रसंग में दैवीय हस्तक्षेप का संकेत दिया है, किन्तु शासन की निरंकुश सत्ता का समर्थन नहीं किया। यह प्रतिवादित करते हुए भी कि ब्रह्मा ने कई देवताओं का नित्य अंश लेकर राजा की सृष्टि की है, मनु ने दिव्यता के विचार को राजा से नहीं अपितु राज्य से जोड दिया है। इस प्रकार मनु ने राज्य की शक्ति की अतिमानवीयता अनुल्लंघनीयता व सर्वोपरिता के विचार की राज्य में निहित संम्प्रभु शक्ति के रूप में व्याख्या की है।

मनु ने राज्य की दैवीय उत्पति के विचार को अन्ततः राज्य की प्रकृति के संविदा सिद्धान्त के रूप में परिवर्तित कर दिया है। राज्य में दिव्यता के विचार को मनु ने शासक के दायित्वों रूप में परिभाषित करते हुए दिव्यता के प्रसंगों को शासक के दिव्य व्रतों की संज्ञा दे दी है। मनु ने अनेक ऐसे संस्थागत सैद्धान्तिक व व्यवहारिक उपायो ंका भी विवेचन किया है जो शासक की शक्ति को मर्यादित करते है तथा उसे स्वेच्छाचारी होने से प्रभावी ढंग से रोक सकते है।

मनु स्मृति मे ंशासन के कार्यो के विषय में हुआ विवेचन एक लोक कल्याण कारी राज्य की धारणा को स्पष्ट करता है। प्रजा की सुरक्षा के विनियमन कारी कार्य के अतिरिक्त, मनु ने अप्राप्त की प्राप्ति, प्राप्त को संरक्षण, संरक्षित का संवर्द्धन और संवद्धित का सुपात्रों में वितरण, राज्य की गतिविधियों का सार बताया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मनु ने विवरणात्मक न्याय को राज्य का प्रमुख लक्ष्य स्वीकार किया है।

मनु ने न्याय के सैद्धान्तिक विवेचन के साथ–साथ न्यायाधीशों की योग्यताओं, न्यायपालिका के संगठन न्यायिक प्रक्रिया, अपराधों व दण्ड के वर्गीकरण आदि पर व्यवस्थित विवेचन कर, एक पूर्ण न्यायिक दर्शन प्रस्तुत किया है, जो भारतीय न्याय–शास्त्र मे ंमनु का मौलिक योगदान है। न्यायिक शक्ति को शासक की निजी शक्ति नही है, अपितु न्यायाधीशों द्वारा समुहिक रूप से युक्त की जाने वाली संस्थागत शक्ति क रूप में पारिभाषित किया है, तथा न्याय के कार्यो में उदासीनता, पक्षपात अथवा विधि के उल्लंघन को असहय माना है। इस प्रकार मनु ने न्याय पालिका के संस्थागत महत्व प्रदान किया है।

मनु ने सामाजिक और राजनीतिक दर्शन की प्रभावशीलता व्यवहारिक उपयोगिता और महत्व इस आत से स्वयं सिद्ध है कि आज भी हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के अनंक सन्दर्भों को मनुस्मृति निर्दिष्ट करती है। स्पष्टतः मनु के विचारों का महत्व सार्वभौमिक और शाश्वत है। यह सत्य हे कि वर्तमान परिस्थितियों में मनु के

सामाजिक भेद–भाव आदि के विचार अप्रांसंगिक ओर आपतिजनक माने जा सकते है, तथापि इससे मनु के महत्व का निषेद नही होता, क्योंकि सामाजिक और राजनीतिक दर्शन के अन्य सन्दर्भों में मनु का योगदान महत्वपूर्ण।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वैदिक (हिन्दू) धर्म के अनुसार कुल सात मनु हुए है जिनमे से प्रथम मनु का पूर्ण नाम स्वयं मनु है जिसका अर्थ है – मनु जो स्वांयभू ब्रह्मा के पुत्र अथवा शिष्य है।
2. मनु स्मृति के अनुसार मनु के वंश में प्रथम मनु से सातवें मनु तक के नाम क्रमशः अग्रलिखित है – स्वांयभुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और वैवस्वत।
3. मनु 7/14
4. मनु 7/17
5. मनु स्मृति के सन्दर्भ में दण्ड का अर्थ विधान माना जाता है। द्रष्टव्य – महर्षि दयानन्द वैदिक स्मृति पृ. 194–195 तथा प्रो. सुरेन्द्र कुमार – विशुद्ध मनु स्मृति पृ. 294
6. मनु 7/23
7. मनु 7/24
8. मनु 9/294
9. द्रष्टव्य – डॉ श्याम लाल पाण्डेय : मनु का राजधर्म पृ. 106–107
10. मनु 9/295
11. मनु 9/296
12. मनु 9/297
13. शर्मा, रामशरण, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं पृ. 47
14. कौटिल्य, 6,1 मनु 8, 274–7
15. अर्थशास्त्र 6/1 वार्ता
16. शान्ति पर्व 69/64–65
17. मनु 9/396
18. मनु 9/295
19. कौटिल्य 8/2
20. मनु 9/294
21. के. वी. आयंगर, सोशल एण्ड पॉलिटिकल आस्पेक्ट्स ऑफ मनु स्मृति, पृ. 174
22. आर. एस. शर्मा, वही, पृ. 47
23. चतुर्वेदी प्रेा मधुकर श्याम : प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक पृ. 50

❖◆❖